SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

महाकवि कालिदास के रूपकों में कारकों का समीक्षात्मक विवेचन

डॉ. किरन देवी, प्रवक्ता, संस्कृत विभाग,
नवयुग पी.जी. कॉलेज, रतनपुर वारी, सहिजन, सुल्तानपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author :
डॉ. किरन देवी, प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, नवयुग पी.जी. कॉलेज, रतनपुर वारी, सहिजन, सुल्तानपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 01/11/2019
Revised on : -----
Accepted on : 06/11/2019
Plagiarism : 01% on 02/11/2019

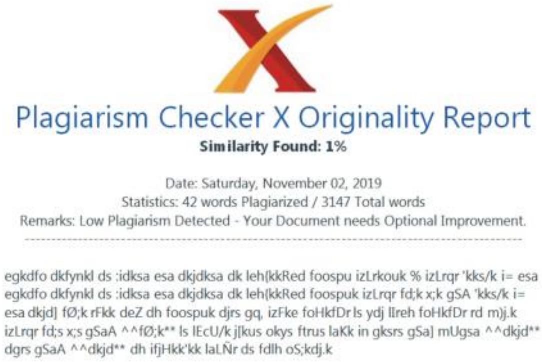

प्रस्तावना :–

प्रस्तुत शोध पत्र में महाकवि कालिदास के रूपकों में कारकों का समीक्षात्मक विवेचना प्रस्तुत किया गया है। शोध पत्र में कारक, क्रिया तथा कर्म की विवेचना करते हुए प्रथम विभक्ति से लकर सप्तमी विभक्ति तक उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं। ''क्रिया'' से सम्बन्ध रखने वाले जितने संज्ञा पद होते हैं, उन्हें ''कारक'' कहते हैं। ''कारक'' की परिभाषा संस्कृत के किसी वैयाकरण ने सीधे–सीधे नहीं दी है। ''कारके'' एक अधिकार सूत्र अवश्य है। प्रसंग वश सभी ने अपनी–अपनी अलग–अलग व्युत्पत्ति दी है। मोटे तौर पर ''करोतीति कारकम् '' (करने वाला) यही अर्थ निष्पन्न होता है। पतञ्जलि की परिभाषा, गोल–मोल है – ''करोति क्रियां निर्वययतीति कारकम् '' (जो क्रिया को पूरा करे उसे कारक कहते है।) इतना तो स्पष्ट है कि ''क्रिया'' कारकों के संप्रत्यय में महत्वपूर्ण भूमिका रखती है। कोई भी कारक क्रिया से प्रत्यक्ष या परोक्ष अवश्य सम्बन्ध रखता है।

मुख्य शब्द :–

रूपक एवं कारक ।

क्रिया का व्यापरांश तो कर्ता के अधीन ही है। कहा भी गया है – 'स्वतन्त्रः कर्ता' 114/541 उसकी स्वतन्त्रता वश इतनी रहती है कि वह अन्यकरणादि कारकों से प्रेरित होकर किसी क्रिया में प्रवृत्त नहीं होता, बल्कि स्वयं ही उसका प्रवर्तक है। क्रिया के दूसरे निमित्त तो उसके सहायक होने से कारक कहलाते हैं।[1]

''क्रियान्वयिकारक'' क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध रखने वाले को हम ''कारक'' कहते हैं।[2]

कारकों की संख्या :–

किसी वाक्य में ''क्रिया'' से सम्बन्ध रखने वाले जितने संज्ञा पद होते हैं, उन्हें ''कारक'' कहते हैं। प्रश्न उठता है कि ''इनकी संख्या कितनी है'', तो इसका उत्तर है – ''कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान अधिकरण ये छः ही कारक है।[3] सम्बन्ध और ''सम्बोधन'' कारक क्यों नही? तो इसका उत्तर है कि इनका क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध नहीं है। पुनः प्रश्न यह उठता है कि सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति का प्रयोजन क्या है? तो इसका भी समाधान यह है कि शेषत्व की विवक्षा में परम्पर या क्रिया से सम्बन्ध रखने वालों को भी कारक मान लेते हैं।

प्रथमा विभक्ति – सूत्र – तिङसमानाधिकरणे प्रथमा :–

क्रिया के करने में जो पदार्थ स्वतन्त्र हो उसे कर्ता कहते हैं। कतृवाच्य में क्रिया का कर्ता प्रथमा में होता है।[4]

यथा – 1. यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोष धीनाम् । (S-1–2)
2. षण्ठे काले त्वमपि लभसे देव विश्रान्ति महान। (VII-1/1)
3. अधिगच्छति महिमानं चन्द्रोऽपि निशापरिगृहीतः। (M –1.13)

इन तीनों उदाहरणों में ''याति'' ''लभसे'' तथा ''अधिगच्छति'' क्रियाओं को पूरा करने मे पूर्णतः स्वतन्त्र तत्तद् पद कतृसंज्ञा को प्राप्त करते हैं, अतः उनमें प्रथमा विभक्ति हुई।

पतञ्जलि ने कर्त्तादि कारकों के प्रयोग को विवक्षाधीन माना है। जब प्रयोक्ताकरण आदि को ''कर्ता'' बनाता है, तब उसे ही प्रथमा विभक्ति में प्रयुक्त करता है।

यथा – असिः छिन्नक्ति (तलवार काटती है) स्थाली पचति (बटलोई स्वयं करती है) स्पष्ट है कि ''असि'' और ''स्थाली'' दोनों क्रमशः करण और अधिकरण है।

2. द्वितीया विभक्ति :–

कर्ता अपनी क्रिया द्वारा जिस पदार्थ की प्राप्ति को अत्यन्त चाहता है वह ''कर्म'' कहलाता है। (जब तिङ् कर्तृवाची हो अर्थात् कर्ता को कहे कर्म न हो तो इस स्थिति में कर्म के अनुक्त होने पर ही उसकी कर्म संज्ञा होगी और उसी को द्वितीया में रखा जाता है।)[5]

उदाहरण –

1. न कश्चिद् वर्णान्तमपथमपकृष्टोऽपि भजते। (S-V– 10)
2. मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गो विपश्चितः। (V-II–7)
3. नितानत कठिनांरुजं मम न वेद सा मानसी। (V-II–11)

यहाँ तत्तकर्ता की ''स्वीकरण'' ''प्रापण'' और ''वेदन'' क्रियाओं के इष्टतम पदार्थ ''कुमार्ग'' ''पाण्डित्य'' तथा ''तीव्र पीड़ा'' है।

3. जिस प्रकार तिङ् से उक्त होने पर कर्म में द्वितीया न होकर प्रथमा होती है, उसी प्रकार अपि इति आदि निपातों से भी कर्म उक्त हो जाता है और उसमें प्रथमा होती है।

यथा – 1. यामाहुः सर्वबीज प्रकृतिरिति ––––।। (S–1–1)
2. शठ इति मामनुजानीहि वाले ––––।। (M-III–20)

यहाँ सर्वबीज प्रकृतिः ''या'' ''शठ'' प्रथमा ''इति'' इस निपात के प्रयोग के कारण है, जबकि ये दोनों क्रमशः ''आछुः'' या अनुजानीहि के कर्म होने से द्वितीयान्त होने चाहिए।

4. जब वक्ता को अपानादि कारकों की अपादानादि रूप में कहने की इच्छा न हो तो वे अपादान आदि कारक अपनी–अपनी संज्ञा को छोड़कर कर्म संज्ञा प्राप्त करते हैं। ऐसे अनुक्त (अपरिभाषित) कर्मों में भी द्वितीया होती है। किन्तु सब जगह ऐसी विवक्षा नहीं होती।[6] अतः दीक्षित ने इनका परिगणन इस प्रकार किया है।

दुह् याच् पच् दण्ड् रूधि प्रच्छि, चि ब्रू शासूसिमथ् मुषाम् ।
कर्मयुक्स्यादकथितं तथा स्यान्नीह्रकृष्वहाम् ।। सि0कौ0 ।।

इस कारिका में ''कर्मयुक्'' का अर्थ है ''क्रिया द्वारा मुख्य कर्म के साथ समबद्ध (गौणकर्म)'' इन सोलह धातुओं को द्विकर्मक कहते हैं, जिसमें ''इप्सितम् '' होने से एक मुख्य कर्म (Indireet Object) कहलाएगा। दूसरा अकथित होने से गौण कर्म कहलाएगा।[7]

यथा – 1. मामाहुः पृथिवीमृतामधिपतिम् ।। (V–4–17)

यहाँ ब्रू धातु का पर्याय ''आहुः'' हैं अतः इसके प्रधान कर्म ''माम् '' के साथ गौण कर्म '' अधिपतिम् ' में भी द्वितीया हुई है।

2. तत्रभवतीरावती देवीं सुखं प्रष्टुमागता।। (M–4/1)

यहाँ पृच्छ धातु के प्रयोग से उसके प्रधान कर्म ''सुखं'' के साथ ही साथ कर्म (Indiyect Object)'' देवी में भी द्वितीया विभक्ति हुई है।

(i) तं ज्ञानपाण्यं वणितं वदन्ति।। M –1–17।।
(उस शिक्षक को बनिया कहते हैं)

यहाँ ब्रू धातु का पर्याय ''वद्'' धातु का प्रयोग है, अतः तं ''ज्ञानपण्यं'' (शिक्षकं) वणिजं दो कर्मों में द्वितीया विभक्ति हुई है।

(i) नय मा नवेन वसतिं पयोमुचा।। V(4–75)
(मुझो नवीन बादलों से बनी यान वाले आवास पर ले चलो)
शीघ्रं नय माम् तस्य सुभगस्य वसतिम् (V-III-9/12)

यहाँ 'नय' का प्रधान कर्म ''माम्'' है और गौण कर्म ''वसति'' है, अतः वे कर्मवाली क्रिया ''नी'' का प्रयोग हुआ है।

5.(क) गत्यर्थक धातुओं (या, गम् चल् विश् आदि) के योग में जब कर्म मार्ग नहीं होता, और क्रिया निष्पादन में शरीर से व्यापार नहीं करना पड़ता है, तो अकर्मक धातुओं के योग में भी कर्म संज्ञा प्राप्त होती है। यथा – महानसंगच्छावः (V-2-18)||

5.(ख) जब कोई क्रिया कुछ देर तक लगातार होती है, तो समवाची शब्द में द्वितीया होती है।[8]

(अ) रात्रिन्दिवं गन्धवहः प्रयाति (S–5)।।
(ब) कतिपय रात्रं सारथिद्वितीयम् (S –2–5–10)

6. निम्नांकित सोपसर्ग धातुओं के आधार की कर्म संज्ञा होती होती है।

क – अधिपूर्वक शी, स्था और आस् ।।9 (क)
ख – अभि और नी पूर्वक विश् धातु।। (9 ख)
ग – उप् अनु, अधि, आ, (ङ) पूर्वक वस् धातु।। 9(ग)

यथा – 1. धर्मासनमध्यासितुं संभाव्यते। (S –6–7–10)
2. प्रकृतिं स्वामिधिष्ठायोतिष्ठतु भवती। (V–4)

7. कुछ अव्ययों के योग में शब्द को द्वितीया विभक्ति सीधे–सीधे प्राप्त होती होते हैं, उसे पद विभक्ति कहते हैं। ऐसे अव्यय पद है –

क – उभयतः, सर्वतः धिक्, उपर्युपरि, अधोऽधः अध्यायि।

ख – अभितः परितः, समया, निकषा, हा, प्रति, धिक् ।

ग – अन्तरा, अन्तरेण विना आदि।

यथा – क – मन्दौत्सुक्योस्मि नगर गमनं प्रति (S –1)।।
ख – क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लविलं सहते
ग – धिक् मामुपास्थेतश्रेयोऽवमानिनम् (S –6)।।
घ – अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्णया (S –4)।।
ङ – परिजनोराजानमभितः स्थितः (M–1)।।

कुछ अनु आदि अव्यय कर्म प्रवचनीय कहलाते हैं, उनका भी नाटकत्रयों में अनुप्रयोग मिलता है। यथा – सर्वमामानुते विरहजाम् (V- 4/47)।।

8. एनप्9 (दक्षिणेन उत्तरेण) के योग में द्वितीया होती है।

यथा – दक्षिणेन वन वाटिकाम् (S –1//16–2)।।

तृतीया विभक्ति :–

1. क्रिया की सिद्धि में जो पदार्थ अत्यन्त उपकारक होता है उसे करण कहते हैं। जिसके व्यापार के अनन्तर ही क्रिया की निष्पत्ति हो, वह अत्यन्त उपकारक माना जाता है।[10]

अनुक्त कर्ता का करण में तष्तीया विभक्ति होती है।[11]

यथा – 1. ज्याशब्देनैव दूरतः स हि विघ्नानपोहति।। (S- 3–1)
2. देवेन देव्या च परिगृहीताः।। (M-1–12.7)
4. यहाँ ज्याशब्देन् देवेन आदि अनुक्त कर्मभूत पदार्थों तृतीया विभक्ति हुई है।

2. तृतीया विभक्ति से जिस प्रकार के करणत्व का बोध होता है, वह निम्नांकित सम्बन्धों द्वारा व्यक्त होता है –

क – किसी कार्य के करने का ढंग या स्वभाव में

1. प्रकृत्या यद् वक्रं तदपि समरेखं नयनयोः। (S –1/9)

2. किसी स्थान विशेष तक जाने के लिए जिस मार्ग का अनुसरण किया जाता है, उसकी दिशा भी साधन (करण) होती है – ''कतयेन दिग्भागेन गत सजाल्म'' (V-1– P–4)

3. गत्यर्थक धातुओं में वाहन भी स्थान करण होता है।

ततः प्रविशति आकाशयानेन राजा मातलिश्च (S –7–428)

4. जिस नाम से शपथ ली जाय वह भी साधन करण होता है – शापितासि मम् जीवितेन् (–5)

3. साधन और करण से भिन्न किसी क्रिया के कारण (प्रयोजन) का बोध कराने वाली संज्ञा तष्तीया में रखी जाती है।

यथा – 1. न खलु वयसा जात्यैव स्वकार्य सहोदरः।। (V –5/8)

4. सादृश्य बोधक तथा समानता (तुल्यता) बोधक शब्द तृतीया विभक्ति में प्रयुक्त होते हैं –

1. अयं न मे पादरजसापि तुल्य इत्यधिक्षिप्त।। (M-I-P-14)

5. निम्नांकित उपपदों के योग में तृतीया विभक्ति होती है –

क – सह, साक, सार्ध, समम् आदि शब्दों का अर्थ है ''साथ'' इनके प्रयोग में वाक्य के प्रधान वाक्य के साथ विद्यमान अप्रधान कर्त्ता में तृतीया होती है।

ख – किसी दशा या अवस्था के बोधक ''गुण'' को भी तृतीया में रखा जाता है।

ग – ''साध्यनास्ति'' इसके बोधक अलम्, कृतम् के योग में तष्तीया होती है, और कभी–कभी क्त्वा प्रयुक्त शब्द का प्रयोग करते हैं।

यथा – 1. अलं मयि स्नेहेन (M-III-12-12)

2. अलमन्यया गृहीत्वा––––।। (M/1/2)

भर्ता तदर्पित कुटुम्बभरेण सार्धम् ।। (S –4/20)

6. ''किं कार्यम् , कोऽर्थ, किं प्रयोजनम् कोलाभः, गुणः वा –––– इसके योग में तृतीया होती है और जिसको लाभ या आवश्यकतापूर्ति होती है, उसमें षष्ठी विभक्ति होती है।

यथा – 1. किं तया दृष्टया (S –2)

2. किं इदानीम् धनुषा।। (V–5/4)

7. किसी दशा या अवस्था विशेष का बोध कराने वाला गुण तृतीया में रखा जाता है –

यथा – मयि प्रसन्ना व पुरूषैव लक्ष्यते (V-III–12)

चतुर्थी विभक्ति :–

1. ''दान'' क्रिया में ''कर्म'' के साथ कर्ता जिसको जोड़ता है या जोड़ना चाहता है, उस पदार्थ को सम्प्रदायन कहते हैं[13क]। ''दान'' अर्थ है फिर न लेने के लिए अपना स्वत्व (अधिकार) हटाते हुए दूसरे का स्वत्व बना देना। ''सम्प्रदान संज्ञक शब्द में चतुर्थी होती है।[12ख]।

यथा – 1. बालपादेभ्यः पयः दातुमितः एव। (S –11–6)

2. तत् इदमस्मै पारितोषिकं प्रयच्छामि।। (M-II–10–5)

2. ''रूचि'' (पसन्द आना) अर्थ वाली धातुओं के प्रयोग में जिसे पसन्द आता है, ''कर्म'' सम्प्रदान संज्ञक होता है।[14]

यथा – 1. यत् प्रभविष्णवे रोचते।। (S-II–6–1)

2. यद् देवाय रोचते।। (M-1–12–19)

3. ''धृ धातु (ऋणी होना) के योग में उत्तम वर्ण (महाजन) तथा ''स्पृह'' धातु (चाहना) के योग में इप्सित वस्तु को चतुर्थी में रखा जाता है।[15]

यथा – 1. वृक्ष सेचने द्वे धारयसि में (S –1–20–3)

2. स्पृहयामि दुर्ललितायास्मै (S-VII-16-8)

4. ''क्रुद्ध'' (क्रोध करना) ''द्रुह'' (वैर रखना) ''ईर्ष्य'' (जलन करना), असूय (निन्दा करना) इन धातुओं तथा इसके समान अर्थ रखने वाली अन्य धातुओं के योग में जिसके प्रति कोप हो उसमें चतुर्थी होती है।[16]

यथा – 1. त्वं दासजनाय कुप्यसि च (M-III-22)

किन्तु सापोसर्ग क्रुघ् आदि धातुएँ कर्म होती हैं।

यथा – 1. न खलु तामभिक्रुद्धो गुरूः (V-III-0.37)

5. क्लृप् धातु (समर्थ होना, पैदा करना) के योग में तथा उसी के समानार्थक (सपद् , भू , जन्) धातुओं के योग में जो परिणाम निकलता है, वह चतुर्थी में रखा जाता है।[17]

यथा – 1. प्रशमयसि विवाद कल्पसे रक्षणाय।। (S-VII-8)

6. कथ् ख्या, शंस, चक्ष, नि + विद् उपदिश आदि धातुओं के योग में जिससे कुछ कहा जाय, उसमें चतुर्थी होती है।

यथा – अद्य प्रयोग विषये मौखिकमुपदिश्यते मया तस्यै (M–1– 5)

7. **उपपद विभक्ति** – नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा अलम् (पर्याप्त) आदि अव्ययों के योग में चतुर्थी होती है।[18]

यथा – 1. स्वस्ति भवते।। (M-II–12–12)

''प्रणाम करना'' इस अर्थ में ''प्रणियत'' या ''प्रणम् '' धातुओं के साथ द्वितीया या चतुर्थी दोनों होती है। यथा –

8. जब किसी वाक्य में तुमुनन्त धातु का अर्थ या भाव द्विपाद्वो अथवा किसी धातु में तुमुन प्रत्यय जोड़ने से जो अर्थ निकलता है, वही अर्थ पाने के लिए उस धातु से निष्पन्न भाववाचक संज्ञा में चतुर्थी प्रयुक्त होती है।[19]

यथा – 1. तदन्वेषणाय प्रथतिष्ये।। (M-II–6–21)
2. वन गमनाय कृतबुद्धि ।। (V–5/18–16)

9. अनादर दिखाने में ''मन'' धातु का गौण कर्म द्वितीया या च में रखा जाता है।[20]

यथा – अवमन्यतेवापि माम् महयम् ।

10. ''भेजना'' अर्थ का बोध कराने वाली धातुओं के योग में वह व्यक्ति सम्प्रदान में होता है, जिसे कोई वस्तु भेजी जाय –

यथा – महयमपि प्रियनिवेदकं विसर्जयिष्यति।।''

पंचमी विभक्ति :–

1. जो पदार्थ अपाय (विश्लेष) के साध्य होने पर अवधि माना गया हो वह अपादान संज्ञक होता है।[17क] और उस अपादान कारक को कहने के लिए पंचमी आती है।[21ख]

यथा – शिल्पिसकासात् आनीतं –––––– (M-I-3-15)

2. पञ्चम्यन्त संज्ञा प्रायः किसी कार्य का कारण बताती है। यदि संज्ञा स्त्रीलिंङ्ग में न हो और किसी कार्य का कारण बताती हो तो वह तष्तीया या पंचमी में रखी जाती है।

यथा – 1. श्रापं तस्या रथक्षोभांदसे नासो निपीडितः।। (V-III–11)
2. न में दूरे किंचित् क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात् । (S–1–9)

3. ''तरप्'' और ईयसुन् प्रत्ययान्त शब्दों के योग में तथा जिससे तुलना की जाती है वह शब्द पंञ्चमी में रखा जाता है।[22]

यथा – 1. मा तावदुद्धर स्वर्गात् गुरूतरा।। (V-II–3.3)

4. जब धातु या प्र + भू धातु तथा इसके समानार्थी निस्सरति आदि के कर्ता का मूल कारण या उद्‌गम स्थान अपादान संज्ञक होता है, और उसमें पंचमी विभक्ति होती है।[23]

यथा – चतुः शालात् कुञ्जः सारसिकः निष्क्रामति (M-III–22)

5. जिस गुरू से कोई विद्या पढ़ी जाती है वह गुरू अपादान संज्ञक होता है और उसमें पंचमी विभक्ति होती है।

यथा – मया तीर्थात् अभिनय विद्या शिक्षिता (M–1–12.6)

6. ''तक'' ''जहाँ'' तथा ''से'' अर्थ में ''आ'' के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है।

यथा – आ परितोषाद् विदुषाम् ।। (S–1–2)

7. **उपपद विभक्ति** – अन्य, भिन्न, पर, इतर, आरात् , ऋते, विनय तथा समय, दिशा संकेतक प्राक्, पूर्व आदेश शब्द के योग में पंचमी होती है।[24]

यथा – 1. कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति।। (S–4/3)
2. वाक्याद् ऋते् पुनरिव प्रतिवारितोस्मि।। (M–1–22)

8. जुगुप्सा, विराम, प्रमाद (भूल) और इनके समानार्थी शब्दों के योग में पञचमी विभक्ति होती है।

यथा – विरम् निरर्थकादारम्भात् ।। (M–1–16–14)

षण्ठी विभक्ति :–

1. कर्मादि से भिन्न प्रातिपादिकार्थ, व्यतिरिक्त – स्व– स्वामि सम्बन्ध आदि की विवक्षा में विशेषतया बोध्य में षष्ठी होती है।[25]

यथा – 1. धारिण्याः सेवादक्षः परिजनोऽयम् ।। (–1/3) S [स्वस्वमिभाव सम्बन्ध]
2. हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।। (S–1/20) [अव्ययीभाव विभाव सम्बन्ध प्रकृति भाव सम्बन्ध]
3. कनक वलयं मया प्रतिसार्यत।। (S–3/10)

2. षष्ठी विभक्ति का शिथिल प्रयोग उन सम्बन्धों को व्यक्त करता है जो वस्तुतः दूसरे कारकों से प्रकट हो सकते हैं।

यथा – 1. द्वौ (युवां) तत्र भवतः दूतं प्रेषयतम् ।। (M–1/19.16)

(तुम दोनों श्रीमान् के पास दूत भेजो) यहाँ ''तत्रभवते'' के स्थान पर ''तत्रभवतः'' इस षष्ठी का प्रयोग हुआ है, यही शिथिल प्रयोग – ''जयसेनायाः तावत् संवेद्य गच्छ'' (–4) में भी हुआ है। इस शंका का निवारण शेषे षष्ठी से किया। पर ''षष्ठ्यन्त'' अस्य का शिथिल प्रयोग है।

3. कृत्य, प्रत्यय, तव्यत् , प्रत्यय, अनीयर (आदि) में अन्त होने वाली क्रियाओं के योग में कर्त्ता तृतीया अथवा षष्ठी में रखा जाता है।[26]

यथा – मम चिरदष्टः कथमुयनेतब्यो–––– (M–214)

4. ईश् , प्र + भू , दय, अधि + इ (स्मृ धातुओं के योग में इन क्रियाओं के कर्म में षष्ठी होती है।

यथा – 1. प्रभवत्याचार्यः शिष्य जनस्य।। (M–1/19.2)

5. जब ''अवयवी'' वाची (सम्पूर्ण) के साथ एक अवयव (अंश) का का बोध कराना हो तो ''अवयवी'' वाची शब्द को षष्ठी में रखते हैं। इसे अंशवाची षष्ठी (Ganitive) कहते हैं।

यथा – जीर्णस्य ऋक्षस्य कस्यापि मुखे पतिष्यति।। (S 2/5.3)

पूरणीवाचक (Ordinal) सर्वनामों का विशेषणों (अंशों) के साथ भी ''अवयवी'' बोधक शब्दों में षष्ठी होती है।

यथा – 1. तापसीनामन्यतमा।। (S–4/4.14)

6. दिशावाची तसिल् (तस्) प्रत्ययान्त शब्दों यथा – दक्षिणतः उत्तरतः, आदि तथा इसके समानार्थी ''उपरि'', ''अघ'', परः, पश्चात् , अग्रे, पुरस्तगत , आदि शब्दों के योग में वह शब्द षष्ठी में रखा जाता है।, जिसको लक्षित कर दिशा बतायी जाती है।[27]

यथा – 1. अग्रे यान्ति रथस्य रेणुपदवीम् ———— (V–1/5)

2. तवप्रसादस्य पुरस्त सम्पदः।। (S–7/30)

7. ''मध्य और ''अन्तरम्'' जैसे अन्तर बोधक शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है।

यथा – मम् च समुद्रपल्लवयोयोरिवान्तरम् ।। (M–1)

8. तुल्यः सदृशः, समं आदि के योग में षष्ठी या तष्तीया होती है। यदि इनका अर्थ ''तुला'' ''उपमा'' न हो''[27ख]

यथा – 1. सदृशमेवैतत स्नेहस्यानवलेपस्य। (S–6/14.21)

2. तुल्योयोगस्तव दिनकृतः।। (V–2/1)

9. कृत (ति तृ अन् आदि) प्रत्यय लगाकर बने हुए संज्ञाओं के योग में उनके कर्ता और कर्म में षष्ठी का प्रयोग होता है।

यथा – 1. क्रिया मिमां कालिदासस्य।। (V–1/2)

2. दुष्यन्त इत्यमिद्वितो भुवनस्य भर्ता।। (S–7–26)

10. जिस प्रकार 'तरप् ' ''ईसयुन्'' प्रत्ययान्त शब्द दो व्यक्तियों या वस्तुओं की तुलना में आते हैं, उसी प्रकार ''तमप् या ईषन् '' प्रत्ययान्त शब्द भी समुदाय में श्रेष्ठता के सूचक के रूप में अंशवाची षष्ठी के रूप में आता है।

यथा – त्वमर्हता प्राक्सरः स्मष्तोऽसि। (S–V)

सप्तमी विभक्ति :–

1. क्रिया का आश्रय कर्ता और कर्म होते हैं। क्रिया के आधारभूत इन दोनों के द्वारा किसी का आधार ''अधिकरण'' कहलाता है।[28]

यथा – 1. सप्तवर्णवेदिकायां मुहुर्तमुपविश्य परिश्रम विनोदं कुरू।। (S–1)

2. प्रमदवने अवतीर्ण ज्ञास्यावः।। (V- 2/33)

2. यदि किसी वस्तु या व्यक्ति को अपने समुदाय में किसी विशेषण द्वारा कोई विशेष निर्देश दिया जाता है तो समुदाय में सप्तमी या षष्ठी होती है।[29]

यथा – 1. स्त्री रत्नेषु ममोर्वशी प्रियतमा।। (V–4/47)

3. कुछ शब्द जिनका अर्थ वर्ताव करना या व्यवहार करना होता है, उनके योग में सप्तमी होती है।

यथा – 1. कुरू प्रिय सखी वृत्तिं सपत्नीजने।। (S–4)

4. स्निह, अभिलष् अनुरंजन, आसक्ति, सम्मान आदि वाचक शब्दों के साथ जिसमें स्नेह आदि प्रदर्शित किया जाता है, उसमें सप्तमी होती है।

यथा – 1. न तापस कन्यकायां ममाभिलाषः।। (S–2)

5. विश्वास, भरोसा आदि अर्थ बोधक शब्दों के सम्बन्ध जिस विश्वासक आदि में किया जाता है, उसमें सप्तमी होती है।

यथा – 1. सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति।। (S- 5/21.26)

6. 'युज् ' धातु तथा उससे निष्पन्न शब्द के साथ सप्तमी आती है।

यथा – 1. भवतीषु अष्टरसाश्रयः नियुक्तः।। (V–2–18)

2. यः पौरवेण राजा धर्माधिकारे नियुक्तः।। (V–1)

7. ''फेंकना'' प्रहार करना, निपटना अर्थ वाली धातुओं से निष्पन्न शब्दों के योग में सप्तमी होती है।

यथा – 1. आर्तत्राणायवः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागासि।। (S–1)

8. जिस समय कोई कार्य होता है, वह सप्तमी में रखा जाता है।

यथा – सर्वः कल्ये वयसि यतते लब्धुमर्थान् कुटुम्बी।। (V–3,1)

9. योग्यता अथवा उपयुक्तता इत्यादि अर्थों का बोध कराने वाले शब्दों के योग में उस व्यक्ति का वाचक शब्द सप्तमी में रखा जाता है।

यथा – अनुकारिणीपूर्वेषां युक्तरूपमिदत्वयि।। (V–2)

अतः इसी भाव को षष्ठी में भी दर्शाया जाता है।

यथा – 1. युक्तरूपमिदं तव।। (S–1/12)

10. अनेक स्थानों पर सप्तमी उस वस्तु या पात्र में भी प्रयुक्त होती है। जिसको कोई वस्तु अर्पित की जाती है।

यथा – मारीचः ते दर्शनं वितरति। (S–7)

भावे षष्ठी तथा सप्तमी :–

1. जिसको प्रसिद्ध क्रिया से (किसी दूसरे से) क्रिया लक्षित होती है, उस क्रियावान् में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। वस्तुतः क्रिया का आधार कर्त्ता या कर्म होता है, अतः उस क्रिया में सप्तमी क्रिया का आधार कर्ता या कर्म होता है, अतः उस क्रिया में सप्तमी होती है।[33]

यथा – 1. बन्धे स्रंसिनि चैक हस्तयमिता पर्याकुलाः मूर्धनाः।। (S–1/30)

2. जिसका अनादर करके (तिरस्कार कारकों) कोई कार्य किया जाता है, उसमें षष्ठी होती है। इससे ''ऐसा होते हुए'' या ''बावजूद इसके'' का भाव प्रकट करने वाले वाक्यांश को ''भावे'' षष्ठी कहा जाता है।[34]

यथा – 1. पश्यतो में क्वासौगतः विहगतस्करः संगमनीयं नाम चूड़ामणिं हृत्वा।। (V– V– 51.5)

2. रूदतः पुत्रस्य पिता प्राब्रजीत् (सि0को0)

संदर्भ ग्रन्थ :–

1. *स्वतन्त्रस्या प्रयोज्यत्वं करणादिप्रयोक्तृता।*
   कर्तुः स्वातन्त्यमेत्तद्धि न कर्मधनवेक्षता।। भतृहरि (वागय)
2. *क्रियान्वयित्वं क्रिया जनकत्वं वा कारकत्वम् ।*
3. *इति कारकाणि षट्।*
4. *क– स्वतन्त्रःकर्ता 1.4.5''।। तेङ् समानाधिकरणे प्रथमा।।*

5. कर्तुरीप्सिमं कर्म 1/4/49।। कर्मणि द्वितीया 2/3/2।।
6. क्वचिनिपतिनाभिधेयम् (दीक्षित)
7. अकथितं च 1/4/5।।
महाभाष्य यह परिणाम इस प्रकार दिया गया है।
8. दुहियाचिरूधिप्रच्छिमिक्षिचित्रामुपयोगनिमित्तम पूर्व विधौ।
व्रुवि शासिगुणेन च यत्सचते तदकीर्तिमाचरितं कविना।।
9. कालध्वनोस्त्रय नासंयोगे द्वितीया /2/3/5।।
व – अधिशीङ्स्थासा कर्म। अभिनिविशरूच। उपन्वध्वाङ्वसः।
10. गत्यर्थ कर्माणि द्वितीया चतर्थ्यौ चेष्टयामनध्वनिः /2/3/1।।
11. एनया द्वितीया 2/3/3 (2) साधकतम् करणम् ।।4/42।
क्तष्करणयोस्तष्तीक 2/3/18.
12. प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानाम् (वार्तिक)
13. हैतौ (2/3/2) (2) इत्थंभूतलक्षणो।।2/3/21।।
किसी दशा या अवस्था विशेष का बोध करने वाला गुण तष्तीया में रखा जाता है।
यथा – मयिप्रसन्ना वपुषैव लक्ष्यते (VIII–12)
14. कर्मणा यमपिप्रैति स सम्पादनम् 1/4/32।। (ख) चतुर्थी सम्प्रदाने 2/3/13।।
15. रूच्यर्थानां प्रीयमाणाः ।1/4/3।।
16. धारेरूत्तमर्णः स्पष्हेरिप्सित ।1/14/35–36।।
17. क्रुध् द्रुहर्प्या सुयार्थानां यं प्रतिकोपः। कुधद्रुहोरप्यसष्टयोः कर्म। (1/4/37–38)
18. 'क्लषपि सम्पद्यमाने च (वार्तिक) 4– मन्यकर्मण्यनादरेकृकृकृ (2/3/17) (V 5/8–16)
19. नमः स्वस्तिस्वाहा स्वधाऽलंषड्योगाच्च (12/3/19)
20. क्रियाथेपिपदस्य च कर्मणि स्थानिनः (2/3/14) स्व–तुमर्थाच्चभाववचनात् (2/3/15)
21. अनादर दिखाने में 'मन् ' धातु का गौण कर्म द्वितीया या च में रखा जाता है। (22)
यथा –अवमन्यते वापि माम् (मह्यम)
22. 'भेजना' अर्थ का बोध कराने वाली धातुओं के योग में वह व्यक्ति सम्प्रदान में होता है जिसे कोई वस्तु भेजी जाय मह्ममपिप्रियमिवेदकं विसर्जनीप्यति।
23. (क) ध्रुवमयोयऽपादानम् (1/4/24)
(ख) अपादाने पञ्चमी (2/3/28)
24. विभाष्यागुणोऽस्मियाम् (2/3/25)
25. (क) जनिकर्तुः प्रकृतिः। भुवः प्रमनश्च ।1/4/30–31।।
26. आख्यातोययोगे। 1/4/21।।
27. अन्यारादितरर्तेकृकृ युक्ते।11/29/32।।
28. आधारोऽधिकरणम् 1/4/45 सप्रम्याधिकरणे ।2/3/36।।
29. 1. षष्ठी शेषे ।।2/3/50।।
2. कृत्यानां कर्तरि वा।।2/3/71।।

30. षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन ।2/3/30।।
31. तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तुतीयान्यतस्याम् ।2/4/62।।
32. यस्य च भावेन भावलक्षणम् ।।2/3/36।।
33. षष्ठी चानादरे 2/3/38।।

****